22. अतः, हमारा यह मत है कि इस अपील में उच्च न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है, तथापि अपीलों का निपटारा इस निदेश के साथ किया जाता है कि रिट याची की पात्रता के संबंध में यू.जी.सी. (नियुक्ति के लिए न्यूनतम अर्हता) विनियम 2009 को भी विचार में लेते हुए किया जाए ।

23. तद्नुसार दोनों अपीलों का निपटारा किया जाता है ।

अपीलों का तद्नुसार निपटारा किया गया ।

ग्रो.

[2018] 3 उम. नि. प. 153

राजेन्द्र राजोरिया

बनाम

जगत नारायण थापक और एक अन्य

23 फरवरी, 2018

न्यायमूर्ति एन. वी. रमना और न्यायमूर्ति एस. अब्दुल नज़ीर

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 398 – न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा खारिज किए गए परिवाद में सेशन न्यायालय द्वारा आगे जांच करने का आदेश देते हुए मामला प्रतिप्रेषित किया जाना – मामले के गुणागुण पर कारणों का उल्लेख किया जाना – सेशन न्यायालय द्वारा गुणागुण के आधार पर की गई ऐसी मताभिव्यक्तियां संज्ञान करने की कोटि में नहीं आती हैं, अतः उच्च न्यायालय द्वारा सेशन न्यायालय के आदेश का स्पष्ट रूप से गलत अर्थान्वयन करने के कारण उसके आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता है ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 190(1) – अपराध का संज्ञान – मजिस्ट्रेट को परिवाद पर कार्यवाही करने के लिए समाधानप्रद आधारों के बारे में अपना समाधान कर लेना चाहिए तथा मजिस्ट्रेट के लिए विस्तारपूर्वक कारण देना अपेक्षित नहीं है किंतु संज्ञान करने वाले आदेश में उसके समक्ष प्रस्तुत सामग्री के आधार पर स्वतंत्रतापूर्वक मस्तिष्क का

प्रयोग किया जाना अवश्य प्रतिबिम्बित होना चाहिए ।

अपील के तथ्य इस प्रकार हैं कि अपीलार्थी द्वारा अधिकारिता रखने वाले पुलिस थाने में भारतीय दंड संहिता और अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां (अत्याचार निवारण) अधिनियम के अधीन यह अभिकथन करते हुए एक शिकायत दर्ज की गई कि कतिपय व्यक्तियों ने प्रत्यर्थी सं. 1 को उसकी भूमि बेची और कपट तथा कूटरचना करके उसकी संपत्ति का नामांतरण करा लिया और गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी भी दी तथा उसकी जाति को लेकर गालियां भी दीं । संबंधित पुलिस थाने ने पूर्वोक्त शिकायत पर कोई कार्रवाई नहीं की । अपीलार्थी ने पुलिस की निष्क्रियता से व्यथित होकर अधिकारिता मजिस्ट्रेट, ग्वालियर के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 200 के अधीन उन्हीं तथ्यों के साथ परिवाद फाइल किया । न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी, ग्वालियर द्वारा पूर्वोक्त दांडिक परिवाद को इस आधार पर खारिज कर दिया कि अपीलार्थी/परिवादी द्वारा उपलब्ध कराए गए अभिलेख पर यह साबित करने के लिए पर्याप्त सबूत नहीं है कि वह अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंध रखता है तथा पक्षकारों के बीच जो विवाद है उसमें सिविल प्रकृति की बातें हैं । अपीलार्थी ने दांडिक परिवाद की पूर्वोक्त खारिजी से व्यथित होकर अतिरिक्त जिला और सेशन न्यायाधीश के समक्ष समावेदन किया । सेशन न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि परिवादी जाटव समुदाय का है जो कि एक अनुसूचित जाति है । सेशन न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया कि वर्णित तथ्यों से यह प्रतिबिंबित होता है कि प्रत्यर्थी सं. 1 ने अन्य व्यक्तियों के साथ षड्यंत्र करके अपीलार्थी की भूमि को अवैध रीति में अंतरित किया था । उसके पश्चात्, यह निष्कर्ष निकाला कि निचले न्यायालय ने तथ्यों तथा विधि का उचित रीति में मूल्यांकन नहीं किया है और मामले को प्रतिप्रेषित कर दिया । मामला प्रतिप्रेषित होने पर, न्यायिक मजिस्ट्रेट ने भारतीय दंड संहिता और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम के अधीन अपराधों का संज्ञान लेते हुए परिवाद को दांडिक मामले के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया । इसी बीच, प्रत्यर्थी ने सेशन न्यायालय द्वारा पारित प्रतिप्रेषण आदेश और मजिस्ट्रेट के संज्ञान लेने वाले आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा पुनरीक्षण आवेदन मंजूर किया और परिवाद को इस कारण से

अभिखंडित कर दिया कि पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा मामले में संज्ञान नहीं लिया जाना चाहिए था क्योंकि इससे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 398 का अतिक्रमण होता है । अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग या तो सेशन न्यायालय द्वारा या उच्च न्यायालय द्वारा किया जाता है और मजिस्ट्रेट द्वारा परिवाद की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 203 के अधीन खारिजी को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 के अधीन दांडिक पुनरीक्षण में चुनौती दी जा सकती है । पुनरीक्षण अधिकारिता की परिधि सुस्थिर है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 में सेशन न्यायाधीश को अपनी स्थानीय अधिकारिता के अन्दर स्थित किसी अधीनस्थ दंड न्यायालय के समक्ष की किसी कार्यवाही के अभिलेख को, किसी अभिलिखित या पारित किए गए निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश की शुद्धता, वैधता या औचित्य के बारे में और ऐसे अधीनस्थ न्यायालय की किन्हीं कार्यवाहियों की नियमितता के बारे में अपना समाधान करने के प्रयोजन से, मंगा सकता है और उसकी परीक्षा कर सकता है । पुनरीक्षण करने की शक्ति की सीमा, अन्य बातों के साथ-साथ, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 के साथ पठित धारा 399 के अधीन उपबंधित है । पूर्वोक्त उपबंधों से यह स्पष्ट है कि धारा 398 अन्य धाराओं के साथ पढ़ी जानी चाहिए, जो सेशन न्यायालय के समक्ष फाइल किए गए पुनरीक्षण आवेदन पर समान रूप से लागू होती हैं । धारा 398 केवल आगे जांच करने का निदेश देने की सुभिन्न शक्ति से संबंधित है, जबकि धारा 397 सपठित धारा 399 और धारा 401 में पुनरीक्षण प्राधिकारी को किसी निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश की शुद्धता, वैधता या औचित्य के बारे में परीक्षा करने की शक्ति प्रदत्त की गई है । सेशन न्यायालय के निर्णय का परिशीलन करने पर इस न्यायालय की यह राय है कि सेशन न्यायालय ने संज्ञान करने वाला आदेश पारित नहीं किया था । सेशन न्यायालय के आदेश का अर्थान्वयन केवल आगे जांच करने के लिए एक प्रतिप्रेषण आदेश के रूप में किया जाना चाहिए । सेशन न्यायालय द्वारा की गई मताभिव्यक्तियों का औचित्य केवल प्रतिप्रेषण के लिए है और ये मताभिव्यक्तियां संज्ञान करने की कोटि में नहीं आती हैं । उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, उच्च न्यायालय ने सेशन न्यायालय के आदेश का स्पष्ट रूप से गलत अर्थान्वयन किया है और गलत आधार पर कार्यवाही की है । दूसरी ओर, पुनरीक्षण

न्यायालय ने भी मजिस्ट्रेट के न्यायालय को इस सीमा तक प्रभावित करके गलती की है कि वह प्रतिप्रेषित मामले पर विचार करते समय सेशन न्यायालय के निष्कर्षों को ध्यान में रखेगा । उच्च न्यायालय के समक्ष यह भ्रम इस तथ्य के कारण सृजित हुआ था कि प्रतिप्रेषण आदेश में विचारण न्यायालय को आगे जांच करने और उसके पश्चात् आदेशिका जारी करने पर विचार करने का विवेकाधिकार दिया गया है । प्रस्तुत मामले में, उच्च न्यायालय ने संज्ञान करने और समन जारी करने के बीच विरोधाभास का मूल्यांकन किए बिना ही परिवाद को विधि के गलत निर्वचन के आधार पर अभिखण्डित कर दिया । उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय का आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि से कायम नहीं रखा जा सकता है । (पैरा 12, 13 और 15)

मजिस्ट्रेट को संज्ञान करते समय परिवाद पर कार्यवाही करने के लिए समाधानप्रद आधारों के बारे में अपना समाधान करना चाहिए और इस प्रक्रम पर इस बात पर विचार नहीं किया जाना चाहिए कि दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं । यह उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि मजिस्ट्रेट के लिए संज्ञान करने के प्रक्रम पर विस्तारपूर्वक कारण अभिलिखित करना भी अपेक्षित नहीं है किंतु आदेश से मजिस्ट्रेट द्वारा उसके समक्ष प्रस्तुत सामग्री पर स्वतंत्रतापूर्वक मस्तिष्क का प्रयोग करना प्रतिबिंबित होना चाहिए । विद्वान् मजिस्ट्रेट के संज्ञान करने वाले आदेश का परिशीलन करने पर यह स्पष्ट है कि विद्वान् मजिस्ट्रेट ने यह मत व्यक्त किया है कि सेशन न्यायालय ने पहले ही प्रथम दृष्ट्या मामला बनाया है । ऐसे निष्कर्ष को कायम रखना मुश्किल है क्योंकि पुनरीक्षण न्यायालय ने मामले के प्रतिप्रेषण को अग्रसर करते हुए केवल कतिपय पहलुओं का अवलोकन किया है । मजिस्ट्रेट द्वारा ऐसी मताभिव्यक्तियां नहीं की जानी चाहिएं थी क्योंकि संज्ञान करते समय उससे स्वतंत्र रूप से मस्तिष्क का प्रयोग करने की प्रत्याशा की जाती है । (पैरा 16 और 17)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2012]	(2012) 3 एस. सी. सी. 64 : **सुब्रामणियन स्वामी** बनाम **मनमोहन सिंह और एक अन्य** ।	16

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2018 की दांडिक अपील सं. 312.

2013 के दांडिक पुनरीक्षण सं. 104 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, ग्वालियर न्यायपीठ के तारीख 8 जुलाई, 2014 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से — सर्वश्री राज किशोर चौधरी, शकील अहमद और ए. के. श्रीवास्तव

प्रत्यर्थियों की ओर से — (सुश्री) प्राची मिश्रा, सर्वश्री अर्जुन गर्ग, चैतन्य, सुनीत पाधी, (सुश्री) प्रज्ञा गर्ग, हर्षवर्धन झा, (सुश्री) मयूरी शुक्ला और आदर्श उपाध्याय

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एन. वी. रमना ने दिया ।

न्या. रमना – इजाजत दी गई ।

2. इस दांडिक अपील में 2013 के दांडिक पुनरीक्षण सं. 104 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, ग्वालियर न्यायपीठ द्वारा तारीख 8 जुलाई, 2014 को पारित किया गया निर्णय आक्षेपित है ।

3. इस अपील में अपीलार्थी ने अधिकारिता रखने वाले पुलिस थाने के समक्ष यह अभिकथन करते हुए भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 420, 466, 468, 471, 120ख और 506 तथा अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के अधीन एक शिकायत फाइल की कि श्रीमती विद्याबाई और अन्य व्यक्तियों ने प्रत्यर्थी सं. 1 को विवादग्रस्त भूमि बेची और कपट तथा कूटरचना करके अपीलार्थी की संपत्ति का नामांतरण करा लिया । यह भी अभिकथन किया गया कि प्रत्यर्थियों ने अपीलार्थी को गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी भी दी और उसकी जाति/जनजाति को नीचा करने के आशय से उन्हें गंदी भाषा में गाली दी । यह उल्लेखनीय है कि संबंधित पुलिस थाने ने पूर्वोक्त शिकायत पर कोई कार्रवाई नहीं की ।

4. अपीलार्थी ने पुलिस की निष्क्रियता से व्यथित होकर अधिकारिता मजिस्ट्रेट, ग्वालियर के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 200 के अधीन उन्हीं तथ्यों के साथ समावेदन किया ।

5. न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी, ग्वालियर द्वारा तारीख 21 अप्रैल, 2012 के आदेश द्वारा पूर्वोक्त दांडिक परिवाद को इस आधार पर खारिज कर दिया कि अपीलार्थी/परिवादी द्वारा उपलब्ध कराए गए अभिलेख पर यह साबित करने के लिए पर्याप्त सबूत नहीं है कि वह अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंध रखता है तथा पक्षकारों के बीच जो विवाद है उसमें सिविल प्रकृति की बाते हैं ।

6. अपीलार्थी ने दांडिक परिवाद की पूर्वोक्त खारिजी से व्यथित होकर 2012 के दांडिक पुनरीक्षण सं. 242 में अतिरिक्त जिला और सेशन न्यायाधीश (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "सेशन न्यायालय" कहा गया है) के समक्ष समावेदन किया । सेशन न्यायालय ने तारीख 7 दिसंबर, 2012 के आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि परिवादी जाटव समुदाय का है जो कि एक अनुसूचित जाति है । सेशन न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया कि वर्णित तथ्यों से यह प्रतिबिंबित होता है कि प्रत्यर्थी सं. । ने अन्य व्यक्तियों के साथ षड्यंत्र करके अपीलार्थी की भूमि को अवैध रीति में अंतरित किया था । उसके पश्चात्, यह निष्कर्ष निकाला कि निचले न्यायालय ने तथ्यों तथा विधि का उचित रीति में मूल्यांकन नहीं किया है और मामले को निम्नलिखित रीति में प्रतिप्रेषित कर दिया :–

> "यह पुनरीक्षण मंजूर किया जाता है और न्यायालय द्वारा पारित 21 जुलाई, 2012 का आदेश अपास्त किया जाता है और मामला इस निदेश के साथ प्रतिप्रेषित किया जाता है कि यदि आवश्यक हो तो इस आदेश में दिए गए निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए आगे जांच करने के पश्चात् परिवाद के रजिस्ट्रीकरण की बाबत उचित आदेश पारित किया जाए और प्रत्यर्थियों को समन किया जाए तथा इसके लिए पक्षकारों को तारीख 20 दिसंबर, 2012 को निचले न्यायालय के समक्ष हाजिर रहने का निदेश दिया जाए ।"

(बल देने के लिए रेखांकित किया गया है)

7. मामला प्रतिप्रेषित होने पर, न्यायिक मजिस्ट्रेट ने भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467, 471, 120ख और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 3(1)(4) के अधीन पूर्वोक्त अपराधों का संज्ञान लेते हुए तारीख 23 जनवरी, 2013 के आदेश द्वारा परिवाद को 2013 के दांडिक मामला सं. 1576 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया और

विद्वान् मजिस्ट्रेट ने तारीख 23 फरवरी, 2013 को निम्नलिखित उल्लेख किया :–

"..... न्यायालय के लिए प्रथम दृष्ट्या यह विनिश्चय करना अपेक्षित है कि कार्यवाही आरंभ करने का प्रश्न उद्भूत होता है या नहीं । यह प्रासंगिक है कि इस मामले में विद्वान् पुनरीक्षण न्यायालय ने गैर-आवेदकों के विरुद्ध कार्यवाही आरंभ करने के लिए प्रथम दृष्ट्या पहले ही पर्याप्त आधार पाया है ।"

(बल देने के लिए रेखांकित किया गया है)

8. इसी बीच, प्रत्यर्थी ने सेशन न्यायालय द्वारा तारीख 7 दिसंबर, 2012 को पारित प्रतिप्रेषण आदेश और मजिस्ट्रेट के तारीख 23 जनवरी, 2013 के संज्ञान लेने वाले आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण आवेदन, 2013 का दांडिक पुनरीक्षण सं. 104, फाइल किया । उच्च न्यायालय ने तारीख 8 जुलाई, 2014 के आक्षेपित निर्णय द्वारा पुनरीक्षण आवेदन मंजूर किया और परिवाद को इस कारण से अभिखण्डित कर दिया कि पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा तारीख 23 जनवरी, 2013 को संज्ञान नहीं लिया जाना चाहिए था क्योंकि इससे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 398 का अतिक्रमण होता है ।

9. हमने दोनों पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेलों को सुना ।

10. जिन प्रश्नों पर विचार करना है, वे सेशन न्यायालय द्वारा पारित प्रतिप्रेषण आदेश और उसके पश्चात् विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लेने वाले आदेश की वैधता के विषय में हैं । क्योंकि उच्च न्यायालय ने दोनों आदेशों की विधिमान्यता पर विचार किया है, इसलिए हम इन पर क्रमानुसार प्रतिप्रेषण आदेश की वैधता से आरंभ करके विचार करना चाहेंगे ।

11. प्रत्यर्थी ने यह दलील दी कि विद्वान् सेशन न्यायाधीश गुणागुण के आधार पर मत व्यक्त नहीं कर सकता था, क्योंकि ऐसा करना मामले का संज्ञान करने की कोटि में आता है । ऐसी दलीलें यद्यपि आकर्षक प्रतीत होती हैं, किंतु इन्हें इस कारण से नामंजूर किया जाना चाहिए कि पुनरीक्षण न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 398 के अधीन केवल आगे जांच करने का आदेश करने के लिए कारण दिए थे और यह नहीं कहा जा

सकता है कि गुणागुण के आधार पर की गई इन मताभिव्यक्तियों का इस मामले में संज्ञान करने पर कोई प्रभाव पड़ा है ।

12. प्रारंभ में, इससे पूर्व कि हम प्रतिप्रेषण के आदेश की वैधता का विनिश्चय करें, हमारे लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 398 के साथ पठित धारा 397 के अधीन दांडिक पुनरीक्षण की व्याप्ति का अवधारण करना अपेक्षित है । यहां पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 और 398 को उद्धृत करना समुचित होगा :–

> **धारा 397. पुनरीक्षण की शक्तियों का प्रयोग करने के लिए अभिलेख मंगाना** – (1) उच्च न्यायालय या कोई सेशन न्यायाधीश अपनी स्थानीय अधिकारिता के अन्दर स्थित किसी अवर दंड न्यायालय के समक्ष की किसी कार्यवाही के अभिलेख को, किसी अभिलिखित या पारित किए गए निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश की शुद्धता, वैधता या औचित्य के बारे में और ऐसे अवर न्यायालय की किन्हीं कार्यवाहियों की नियमितता के बारे में अपना समाधान करने के प्रयोजन से, मंगा सकता है और उसकी परीक्षा कर सकता है और ऐसा अभिलेख मंगाते समय निदेश दे सकता है कि अभिलेख की परीक्षा लंबित रहने तक किसी दंडादेश का निष्पादन निलंबित किया जाए और यदि अभियुक्त परिरोध में है तो उसे जमानत पर या उसके अपने बंधपत्र पर छोड़ दिया जाए ।
>
> **स्पष्टीकरण** – सभी मजिस्ट्रेट, चाहे वे कार्यपालक हों या न्यायिक और चाहे वे आरंभिक अधिकारिता का प्रयोग कर रहे हों, या अपीली अधिकारिता का, इस उपधारा के और धारा 398 के प्रयोजनों के लिए सेशन न्यायाधीश से अवर समझे जाएंगे ।
>
> **398. जांच करने का आदेश देने की शक्ति** – किसी अभिलेख की धारा 397 के अधीन परीक्षा करने पर या अन्यथा उच्च न्यायालय या सेशन न्यायाधीश, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को निदेश दे सकता है कि वह, ऐसे किसी परिवाद की, जो धारा 203 या धारा 204 की उपधारा (4) के अधीन खारिज कर दिया गया है, या किसी अपराध के अभियुक्त ऐसे व्यक्ति के मामले की, जो उन्मोचित कर दिया गया है, अतिरिक्त जांच स्वयं करे या अपने अधीनस्थ मजिस्ट्रेटों में से किसी के द्वारा कराए तथा मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ऐसी अतिरिक्त जांच स्वयं कर

सकता है या उसे करने के लिए अपने किसी अधीनस्थ मजिस्ट्रेट को निदेश दे सकता है :

परन्तु कोई न्यायालय किसी ऐसे व्यक्ति के मामले में, जो उन्मोचित कर दिया गया है, इस धारा के अधीन जांच करने का कोई निदेश तभी देगा जब इस बात का कारण दर्शित करने के लिए कि ऐसा निदेश क्यों नहीं दिया जाना चाहिए, ऐसे व्यक्ति को अवसर मिल चुका हो ।

पूर्वोक्त उपबंधों के परिशीलन से यह प्रतिबिंबित होता है कि पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग या तो सेशन न्यायालय द्वारा या उच्च न्यायालय द्वारा किया जाता है और मजिस्ट्रेट द्वारा परिवाद की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 203 के अधीन खारिजी को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 के अधीन दांडिक पुनरीक्षण में चुनौती दी जा सकती है । पुनरीक्षण अधिकारिता की परिधि सुस्थिर है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 में सेशन न्यायाधीश को अपनी स्थानीय अधिकारिता के अन्दर स्थित किसी अधीनस्थ दंड न्यायालय के समक्ष की किसी कार्यवाही के अभिलेख को, किसी अभिलिखित या पारित किए गए निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश की शुद्धता, वैधता या औचित्य के बारे में और ऐसे अधीनस्थ न्यायालय की किन्हीं कार्यवाहियों की नियमितता के बारे में अपना समाधान करने के प्रयोजन से, मंगा सकता है और उसकी परीक्षा कर सकता है ।

13. पुनरीक्षण करने की शक्ति की सीमा, अन्य बातों के साथ-साथ, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 के साथ पठित धारा 399 के अधीन उपबंधित है । पूर्वोक्त उपबंधों से यह स्पष्ट है कि धारा 398 अन्य धाराओं के साथ पढ़ी जानी चाहिए, जो सेशन न्यायालय के समक्ष फाइल किए गए पुनरीक्षण आवेदन पर समान रूप से लागू होती हैं । धारा 398 केवल आगे जांच करने का निदेश देने की सुभिन्न शक्ति से संबंधित है, जबकि धारा 397 सपठित धारा 399 और धारा 401 में पुनरीक्षण प्राधिकारी को किसी निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश की शुद्धता, वैधता या औचित्य के बारे में परीक्षा करने की शक्ति प्रदत्त की गई है ।

14. हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय में यह गलत निष्कर्ष निकाला है कि सेशन न्यायालय ने स्वयं मामले

का संज्ञान किया था । इसे निम्न प्रकार से उद्धृत किया जा सकता है :–

> "इस उपबंध के परिशीलन मात्र से यह स्पष्ट है कि आक्षेपित आदेश संहिता की धारा 398 के अधीन पारित नहीं किया जा सकता है । विधान-मंडल द्वारा इस उपबंध में 'निदेश दे सकेगा' शब्द प्रयोग किया गया है । यह शब्द न्यायालय को आगे जांच करने का आदेश देने का व्यापक विवेकाधिकार देता है । सेशन न्यायालय को अपराध का संज्ञान करने, अपराध का निर्धारण करने और अपने इस निष्कर्ष पर पहुंचने की शक्ति नहीं है कि परिवाद पर कार्यवाही करने का आधार है या नहीं और फिर प्रथम दृष्ट्या मामला पाए जाने पर मजिस्ट्रेट को परिवाद का रजिस्ट्रीकरण करने की बाबत निदेश दे ।"
>
> (बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

15. सेशन न्यायालय के निर्णय (ऊपर उद्धृत) का परिशीलन करने पर हमारी यह राय है कि सेशन न्यायालय ने संज्ञान करने वाला आदेश पारित नहीं किया था । सेशन न्यायालय के आदेश का अर्थान्वयन केवल आगे जांच करने के लिए एक प्रतिप्रेषण आदेश के रूप में किया जाना चाहिए । सेशन न्यायालय द्वारा की गई मताभिव्यक्तियों का औचित्य केवल प्रतिप्रेषण के लिए है और ये मताभिव्यक्तियां संज्ञान करने की कोटि में नहीं आती हैं । उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, उच्च न्यायालय ने सेशन न्यायालय के आदेश का स्पष्ट रूप से गलत अर्थान्वयन किया है और गलत आधार पर कार्यवाही की है । दूसरी ओर, पुनरीक्षण न्यायालय ने भी मजिस्ट्रेट के न्यायालय को इस सीमा तक प्रभावित करके गलती की है कि वह प्रतिप्रेषित मामले पर विचार करते समय सेशन न्यायालय के निष्कर्षों को ध्यान में रखेगा । उच्च न्यायालय के समक्ष यह भ्रम इस तथ्य के कारण सृजित हुआ था कि प्रतिप्रेषण आदेश में विचारण न्यायालय को आगे जांच करने और उसके पश्चात् आदेशिका जारी करने पर विचार करने का विवेकाधिकार दिया गया है । प्रस्तुत मामले में, उच्च न्यायालय ने संज्ञान करने और समन जारी करने के बीच के विरोधाभास का मूल्यांकन किए बिना ही परिवाद को विधि के गलत निर्वचन के आधार पर अभिखण्डित कर दिया । उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय का आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि से कायम नहीं रखा जा सकता है ।

16. अब मामले का संज्ञान करने वाले विद्वान् मजिस्ट्रेट के आदेश की वैधता विषयक द्वितीय पहलू पर आते हैं । संज्ञान करते समय मजिस्ट्रेट के लिए अपेक्षित मानदंड को इस न्यायालय द्वारा अनेक निर्णयों में भली-भांति स्थिर किया गया है । **सुब्रामणियन स्वामी** बनाम **मनमोहन सिंह और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने "संज्ञान" शब्द के अर्थ को यह अभिनिर्धारित करते हुए स्पष्ट किया है कि " .... संज्ञान, विधिक बोलचाल में, अधिकारिता रखने वाले न्यायालय द्वारा उसके समक्ष प्रस्तुत किसी वाद या मामले पर न्यायिक अवेक्षा करना है जिससे कि यह विनिश्चय किया जा सके कि क्या कार्यवाहियां आरंभ करने के लिए और वाद या मामले का न्यायिकतः अवधारण करने के लिए कोई आधार है या नहीं" । हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि मजिस्ट्रेट को संज्ञान करते समय परिवाद पर कार्यवाही करने के लिए समाधानप्रद आधारों के बारे में अपना समाधान करना चाहिए और इस प्रक्रम पर इस बात पर विचार नहीं किया जाना चाहिए कि दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं । यह उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि मजिस्ट्रेट के लिए संज्ञान करने के प्रक्रम पर विस्तारपूर्वक कारण अभिलिखित करना भी अपेक्षित नहीं है किंतु आदेश से मजिस्ट्रेट द्वारा उसके समक्ष प्रस्तुत सामग्री पर स्वतंत्रतापूर्वक मस्तिष्क का प्रयोग करना प्रतिबिंबित होना चाहिए ।

17. विद्वान् मजिस्ट्रेट के संज्ञान करने वाले आदेश का परिशीलन करने पर यह स्पष्ट है कि विद्वान् मजिस्ट्रेट ने यह मत व्यक्त किया है कि सेशन न्यायालय ने पहले ही प्रथम दृष्ट्या मामला बनाया है । ऐसे निष्कर्ष को कायम रखना मुश्किल है क्योंकि पुनरीक्षण न्यायालय ने मामले के प्रतिप्रेषण को अग्रसर करते हुए केवल कतिपय पहलुओं का अवलोकन किया है । मजिस्ट्रेट द्वारा ऐसी मताभिव्यक्तियां नहीं की जानी चाहिएं थी क्योंकि संज्ञान करते समय उससे स्वतंत्र रूप से मस्तिष्क का प्रयोग करने की प्रत्याशा की जाती है । प्रस्तुत मामले में, हम मजिस्ट्रेट के संज्ञान करते समय व्यक्तिपरक समाधान का पुनर्विलाकन करने के लिए अपील न्यायालय पर परिसीमा को मान्य ठहराते हैं, किंतु जब तक ऐसा स्वतंत्र समाधान आदेश में प्रतिबिंबित न होता हो, उसे कायम रखा जाना मुश्किल होगा । इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि न्याय केवल किया ही नहीं

---

[1] (2012) 3 एस. सी. सी. 64.

जाना चाहिए अपितु स्पष्ट रूप से और असंदिग्ध रूप से किया गया भी दिखाई पड़ना चाहिए । हमारी सांविधानिक परंपरा में यह स्थिर है कि हमने हमारी दांडिक न्याय व्यवस्था में सारभूत निष्पक्षता तथा प्रक्रिया संबंधी निष्पक्षता दोनों को ऐसे विनिश्चयों के करने में जिनसे अधिकार, हित और विधिसम्मत प्रत्याशाओं पर प्रभाव पड़ता है, प्रक्रिया संबंधी निष्पक्षता बरतने के अर्थ में, केवल किसी प्रतिकूल सांविधिक आशय के स्पष्ट प्रकटीकरण के अध्यधीन रहते हुए, आत्मसात् किया है ।

18. इस मुद्दे से अलग, हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि समस्त भारत में मजिस्ट्रेटों को अनेक अवसरों पर इस न्यायालय के ठोस पूर्व-निर्णयों द्वारा इस बाबत अपने न्यायिक मस्तिष्क का प्रयोग करते समय अत्यधिक सतर्कता बरतने के लिए मार्गदर्शित किया जाता रहा है । दुर्भाग्यवश, हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि अनेक मामलों में, जो हमारे समक्ष लाए जाते हैं, अन्यथा प्रतिबिंबित होता है ।

19. हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया गया कि एक सिविल न्यायालय ने बाद में श्रीमती विद्याबाई और अन्य व्यक्तियों द्वारा जगत नारायण थापक के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख को अकृत और शून्य घोषित कर दिया गया था । इसके अतिरिक्त, हमें मामले के गुणागुण पर सेशन न्यायालय द्वारा की गई मताभिव्यक्तियों से भी अवगत कराया गया है । किंतु हम उन विवाद्यकों पर विचार करना नहीं चाहते हैं ।

20. उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, यह अपील मंजूर की जाती है और आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है । तद्नुसार, विचारण न्यायालय द्वारा परिवाद पर नए सिरे से विचार किया जाए । इस मामले से विलग होने से पूर्व हम यह स्पष्ट कर सकते हैं कि विचारण न्यायालय को इस न्यायालय द्वारा वर्तमान अपील का विनिश्चय करने के प्रयोजन के लिए की गई किन्हीं मताभिव्यक्तियों से प्रभावित हुए बिना मामले में कार्यवाही करने का निदेश दिया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.